भारत की भूजल चुनौतियां

मारकस मोएंक

भूजल का आपके लिए महत्व तभी होता है जब आप पानी का अभाव भोग रहे होते हैं। इक्कीसवीं सदी का भारत जिन सबसे जटिल व सामाजिक दृष्टि से चुनौतीपूर्ण मुद्दों का सामना कर रहा है उनमें से बहुत से मुद्दे भूजल प्रबंधन से सम्बंधित हैं। इनका निराकरण किस तरह किया जाता है इसका सीधा प्रभाव पर्यावरण और अधिकांश ग्रामीण व शहरी लोगों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी पर पड़ेगा।

भूजल एक छुपा हुआ संसाधन है। यही कारण है कि इस संसाधन के आधार और इससे मिलने वाली सेवाओं, दोनों के बारे में पर्याप्त समझ का अभाव है। इस लेख में सबसे पहले भूजल पर आधारित वृहद पर्यावरणीय व सामाजिक सेवाओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसके बाद भूजल संसाधनों के मुख्य पक्षों व उभरती समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। अन्त में भूजल के टिकाऊ प्रबंधन में निहित कुछ सामाजिक, नैतिक व संस्थानिक चुनौतियों का ब्यौरा दिया गया है।

खाद्य सुरक्षा

पिछले पचास वर्षों के दौरान खाद्य सुरक्षा पाने में भूजल आधारित सिंचाई के विस्तार ने प्रमुख भूमिका निभाई है। प्रायः भूजल से सिंचित क्षेत्रों में फसलों का उत्पादन, सतही स्रोतों से सिंचित क्षेत्रों की तुलना में कहीं ज़्यादा होता है। उदाहरण के लिए शोध दर्शाते हैं कि भारत में भूजल से सिंचित क्षेत्रों में फसलों का उत्पादन सतही जल (नदी, तालाब) से सिंचित क्षेत्रों की तुलना में एक तिहाई से लेकर डेढ़ गुना तक अधिक रहता है। अनुमानतः भारत के कुल कृषि उत्पादन का लगभग 70-80 प्रतिशत हिस्सा भूजल पर निर्भर है।

भूजल से सिंचित क्षेत्रों में अधिक उत्पादन का कारण मुख्यतः इस पर नियंत्रण एवं इसका विश्वसनीय होना है। प्रारंभिक अध्ययन बताते हैं कि सिर्फ जल स्रोतों पर नियंत्रण के कारण ही सम्भावित उत्पादन और वास्तविक उत्पादन के बीच का अंतर 20 प्रतिशत तक कम हो सकता है। यानी लाभ में बढ़ोत्तरी। साथ ही सूखे तथा वर्षा में होने वाले सामान्य उतार-चढ़ाव के दौरान भूजल संरक्षित भंडार का कार्य करता है। भूजल से सिंचित क्षेत्रों से बढ़ा समग्र उत्पादन, क्षेत्रीय व राष्ट्रीय स्तर के खाद्य उत्पादन का एक प्रमुख कारक है। भूजल के कुछ सबसे महत्वपूर्ण खाद्य सुरक्षा लाभ भी किसानों को व्यक्तिगत स्तर पर प्राप्त होते हैं। समाज के विभिन्न समूहों की मुख्य उत्पादक व सामाजिक संसाधनों के नेटवर्क तक कितनी पहुंच है इसकी पहचान करनी होगी। इसके आधार पर व्याख्या की जा सकती है कि खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाले खतरों समेत प्राकृतिक आपदाओं का उन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। ग्रामीण जनता के लिए भूजल इन तमाम संसाधनों में से सबसे ज़्यादा महत्व रखता है।

जिन परिवारों की पहुंच मुख्य संसाधनों तक होती है वे वैकल्पिक व्यवस्था बनाने में भी सक्षम होते हैं। यानी प्राकृतिक खतरों का उन पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है। भूजल आधारित सिंचाई सूखे या वर्षा के उतार-चढ़ाव के

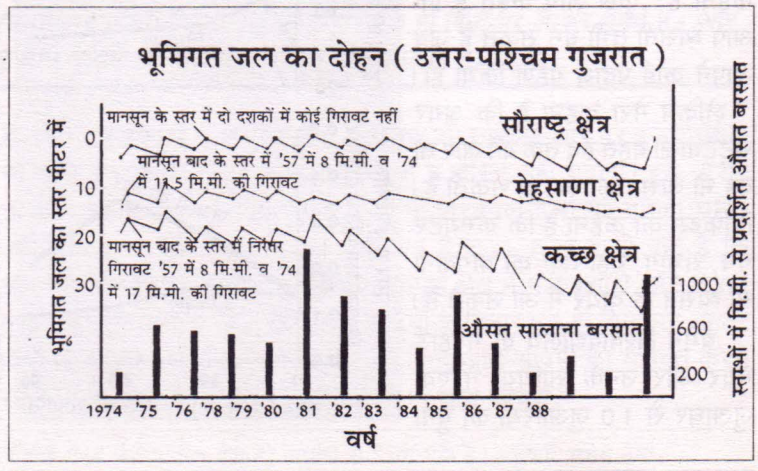

कारण, बीज, श्रम, उर्वरकों, कीटनाशकों एवं अन्य साधनों में होने वाले निवेश के डूबने के जोखिम को कम कर देती है। साथ ही सामान्य वर्षा की तुलना में हुए अधिक उत्पादन से परिवारों का भंडारण भी बढ़ेगा। परिणामस्वरूप भूजल की उपलब्धता वाले परिवारों की बचत ज़्यादा होगी जिन्हें वे अन्य उत्पादक संसाधनों या गतिविधियों में निवेश कर सकते हैं।

गागर सर पर रख पनिया भरण मीलों तक जाती औरतें। मालूम नहीं आज भी गागर भर साफ पानी मिलेगा भी या...

जब सूखा पड़ता है या वर्षा कम होती है तब इन परिवारों को दोहरा लाभ होता है। पहला तो यह कि इन परिवारों के पास अपने जल स्रोत होते हैं और दूसरा यह कि पूर्व में जमा नकदी या खाद्यान्न बचाने से हुई आय को वैकल्पिक स्रोतों में निवेश किया जा सकता है।

पीने का साफ पानी

भूजल घरेलू जल प्रदाय का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। भारत में घरेलू उपयोग के लिए ग्रामीण जल प्रदाय के 80 प्रतिशत भाग की पूर्ति भूजल से होती है। पेयजल की उपादेयता स्पष्ट है। लेकिन यह घरेलू उपयोग के रूप में भूजल की उपयोगिता का एक हिस्सा भर है। शहरों व गांवों में स्थित कुएं, के पानी का उपयोग ही घरेलू कामों में होता है। इसके कारण लोग, खासकर महिलाएं झरनों व नदियों से पानी लाने के लिए रोज़ लम्बा सफर तय करने के श्रमसाध्य काम से बरी हो जाते हैं। लिहाज़ा अन्य गतिविधियों के लिए श्रम व समय बच जाता है। पास में पानी उपलब्ध होने से लोग इसका पर्याप्त मात्रा में उपयोग करते हैं। इसका लाभ बेहतर स्वास्थ्य के रूप में देखा जा सकता है। मिट्टी की परिष्करण क्षमता और लम्बे समय तक ज़मीन में रहने की वजह से भूजल सतही जल की तुलना में कहीं ज़्यादा साफ भी रहता है।

आर्थिक विकास

गरीबी उन्मूलन और आर्थिक विकास की दृष्टि से भूजल एक प्रमुख संसाधन है। साक्ष्य बताते हैं कि पारिवारिक अर्थव्यवस्था पर बेहतर जल स्रोत कई सकारात्मक प्रभाव छोड़ते हैं। सिंचित कृषि पर निर्भर क्षेत्रों में जल स्रोतों की विश्वसनीयता और इसके परिणामस्वरूप होने वाला उच्च उत्पादन से छोटे किसानों की उनकी आय में वृद्धि होती है। भारत में दो हेक्टेयर से कम भूमि वाले छोटे व सीमांत किसानों के पास कुल कृषि भूमि का 29 प्रतिशत हिस्सा है। कुएं से सिंचित कुल भूभाग का 38.1 प्रतिशत विद्युत ट्यूबवेलों में से 35.3 प्रतिशत ट्यूबवेल इसी वर्ग के किसानों के पास हैं।

इसी प्रकार खेती के क्षेत्रफल के लिहाज़ से छोटे व सीमांत किसानों के पास (अनुपातिक दृष्टि से) बड़े किसानों की तुलना में ज़्यादा सिंचित भूमि है। चूंकि सिंचित भूमि में उत्पादकता, असिंचित भूमि की तुलना में अधिक रहती है, अतः छोटे व सीमांत किसानों के लिए सिंचाई स्रोतों की बेहतर उपलब्धता गरीबी को बड़े स्तर पर खत्म कर सकती है।

भूजल स्रोतों के विकास के सकारात्मक प्रभाव कुओं के मालिकों तक सीमित न रहकर समाज के दूसरे लोगों पर भी पड़ते हैं। भूजल की उपलब्धता सहायक साधनों की मांग को स्थाई बनाती है। पम्प व कुओं के लिए जरूरी सुधार सेवाओं का विस्तार ग्रामीण लघु उद्योगों को आधार प्रदान करता है। इसके अलावा भूजल सिंचाई के विस्तार से श्रमिकों की मांग भी बढ़ सकती है। आकलन बताते हैं कि भारत में एक कुएं की निर्माण लागत का लगभग 44% भाग श्रमिकों की मज़दूरी पर खर्च होता है। इसके साथ ही सिंचित भूमि पर बढ़ी कृषि गतिविधियों के चलते प्रति हेक्टेयर तकरीबन 45 श्रम दिवसों का अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रोज़गार पैदा होता है। इस प्रकार भूजल सिंचाई के विस्तार के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में रोज़गारों का सतत सृजन होता है।

बहरहाल, सिंचाई के लिए भूजल विकास के सभी प्रभाव समान नहीं होते हैं। ट्यूबवेल निर्माण एवं खुदाई की

आधुनिक तकनीक पूंजी प्रधान होती है। इससे भूजल के प्रारंभिक दोहनकर्ता, सामान्यतः बड़े किसान रहे हैं, जो बाज़ार में बिक्री के लिए फसलों का अतिरिक्त उत्पादन करते हैं। जबकि जीवन निर्वाह के लिए फसलों का उत्पादन करने वाले छोटे किसान अक्सर उथले, खुले कुओं पर निर्भर रहते हैं जो विभिन्न मानव एवं पशुचालित पानी लिफ्ट करने वाले यंत्रों का उपयोग करते हैं। विद्युत चालित जल दोहन तकनीकी विस्तार के चलते भूजल स्तर नीचे होता जाता है। इसके कारण उथले कुएं व पशुचालित जल दोहन यंत्र बेमानी हो चले हैं। 1960 के दशक में पूरी गंगा घाटी एवं भारत के अन्य भागों में यही स्थिति थी।

जल स्तर की चिंता

जब जलस्तर में गिरावट आने लगी तो भारत की कुछ राज्य सरकारों ने चुनिन्दा ऋण नियंत्रण, विद्युत कनेक्शन पर प्रतिबंध एवं लाइसेंस व्यवस्था जैसे प्रशासनिक नियमों को लागू करने का प्रयास किया। इन नियमों का उन भूस्वामियों पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा जिन्होंने पहले ही ट्यूबवेल खुदवा लिए थे, परन्तु भावी ट्यूबवेलों की खुदाई सीमित हो गई। खास तौर पर उन गरीब किसानों पर उल्टा असर पड़ा जो कि पम्प लगाने एवं चलाने की लागत वहन करने के लिए ऋण व राजकीय सहायता वाले विद्युत कनेक्शनों पर निर्भर थे। इसके अतिरिक्त आर्थिक व राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली लोग प्रायः अधिकारियों से मिलीभगत कर या स्वयं के आर्थिक संसाधनों से ट्यूबवेलों का निर्माण करके इन नियमों का उल्लंघन करते रहे।

जब बात प्रबंधन की ज़रूरत की होती है तो अक्सर भूजल की समान उपलब्धता, तनाव का मुख्य कारण बनती है। भूजल स्रोतों के तेज़ व निर्बाध उपयोग ने गरीबों को उत्पादन के लिए ज़रूरी एक प्रमुख संसाधन उपलब्ध कराकर गरीबी को कम किया है। परन्तु भूजल स्रोतों के विकास का यही तरीका वर्तमान में विश्व के कई हिस्सों में उभर रही अतिदोहन एवं गुणवत्ता की समस्याओं का प्राथमिक कारण भी है। जब भूजल की समस्या बढ़ती है तो सीमांत आबादी ही प्रायः सबसे पहले प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए यदि जलस्तर घटता है तो गहरे कुएं बनवाने में अक्षम गरीब लोगों पर सबसे ज़्यादा आर्थिक दुष्प्रभाव पड़ेंगे।

इसी तरह यदि भूजल दोहन को कम करना ज़रूरी हो जाता है तो अपने हितों की रक्षा करने में सबसे ज़्यादा असमर्थ गरीब ही होंगे। नए कुओं के निर्माण पर प्रतिबंध जैसे प्रावधान सम्पन्न समुदायों की तुलना में गरीब लोगों को कहीं ज़्यादा प्रभावित करेंगे क्योंकि सम्पन्न लोग तो बहुत पहले ही कुएं खुदवा चुके हैं। यानी समाज के सभी वर्गों के लिए भूजल की समान उपलब्धता एवं संसाधनों के टिकाऊ प्रबंधन के बीच एक गहरी असंगति है।

भूजल पर निर्भर पर्यावरणीय सेवाओं एवं उपयोगिताओं को प्रायः ढंग से समझा नहीं गया है। भूजल से सम्बंधित पर्यावरणीय सरोकार आम तौर पर मानवीय उपयोगों (विशेषकर घरेलू जल प्रदाय) पर प्रदूषण एवं गुणवत्ता ह्रास के प्रभावों पर केंद्रित रहते हैं। हालांकि भूजल पर्यावरण पर विकास के प्रभाव, अपनी प्राकृतिक अवस्था में भूजल स्रोतों द्वारा प्रदत्त विभिन्न पर्यावरणीय सेवाओं से भिन्न होते हैं।

पर्यावरणीय सेवाएं

भूजल द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रमुख पर्यावरणीय सेवाओं का उल्लेख नीचे दी गई सूची में किया गया है। हालांकि यह सूची पूर्ण नहीं है लेकिन उल्लेख करती है कि विभिन्न पर्यावरणीय उपयोगिताएं किस हद तक भूजल पर निर्भर हैं:

✔ भूजल के निकास से उत्पन्न *जलग्रहण क्षेत्र का आधार प्रवाह* संभवतः भूजल से सम्बंधित सबसे प्रत्यक्ष पर्यावरणीय उपयोगिता है। बहुत से क्षेत्रों में झरनों में और सूखे मौसम में नदियों का प्रवाह, बहुत हद तक भूजल पर आश्रित रहता है।

✔ *अंतःधारा मत्स्य क्षेत्र एवं जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों* को बनाए रखने के लिए अंतःधारा प्रवाह बहुत आवश्यक है। और जैसा कि पहले बताया गया है इस हेतु भूजल जल का प्रमुख स्रोत हो सकता है। खास तौर पर सूखे और गर्मी के मौसम के दौरान।

✔ *अंतःस्थलीय वेटलैण्ड* सबसे ज़्यादा उत्पादक एवं जैव विविधता वाले अंतःस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्रों में से एक होते हैं। इनमें से बहुत से जलक्षेत्रों में जल की उपलब्धता, उच्च भूजल स्तर पर निर्भर होती है।

✔ *सतह की वनस्पति*: भूजल स्तर कई वनस्पति प्रजातियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। जिन पारिस्थितिकी

बहुत से शुष्क एवं सख्त पथरीली चट्टानी क्षेत्रों में अतिदोहन और इससे जुड़ी गुणवत्ता की समस्याएं व्यापक रूप से उभर रही हैं। हालांकि अभी तो अतिदोहन से प्रभावित क्षेत्र सीमित हैं, लेकिन यदि यही गति जारी रही तो भूजल से रीते ब्लॉक की संख्या हर 12.5 वर्षों में दुगुनी होती जाएगी। यानी वर्ष 2017–18 तक सूचीबद्ध राज्यों के 4248 ब्लॉकों में से 1532 ब्लॉक (अर्थात 36 प्रतिशत) संकट के दौर से गुज़र रहे होंगे।

तंत्रों में भूजल का स्तर ऊपर रहता है, वहां वे पौध प्रजातियां अधिकता में हो सकती हैं जो अपनी जलीय आवश्यकताओं का अधिकतर भाग संतृप्त मिट्टी से प्राप्त करती हैं। ये वनस्पतियां अक्सर वन्य जीवों के लिए प्राकृत आवासों का काम करती हैं। इसके अलावा ये भोजन, ईंधन एवं लकड़ी के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में काम आ सकती हैं।

क्षेत्रों में भूजल परिस्थितियों पर आधारित पर्यावरणीय उपयोगिताएं विस्तृत मानवीय उपयोगों के साथ नज़दीक से जुड़ी रहती हैं। भूजल जलीय पारिस्थितिकी और मानवीय उपयोग तंत्र का अभिन्न अंग है। इसीलिए सतही जल के उपयोग, भूजल के उपयोग या वनस्पतियों के स्वरूप में बदलाव इन सभी अंतरसम्बंधित तंत्रों को प्रभावित कर सकता है। ये बदलाव प्रायः ऐसे प्रभाव छोड़ते हैं जिनका अनुमान लगाना कठिन होता है।

भूजल का अतिदोहन

पिछले चार दशकों में दक्षिण एशिया के अधिकतर भागों में भूजल का विकास तीव्र गति से हुआ है। सन् 1951 से 1991 के बीच भारत में उथले ट्यूबवेलों की संख्या मोटे तौर पर प्रत्येक 3.7 वर्ष में दुगनी हुई है। इस तीव्र गति के विकास ने इससे जुड़े कई मुद्दों की तरफ ध्यान दिलाया है। बहुत से शुष्क एवं सख्त पथरीली चट्टानी क्षेत्रों में अतिदोहन और इससे जुड़ी गुणवत्ता की समस्याएं व्यापक रूप से उभर रही हैं। हालांकि अभी तो अतिदोहन से प्रभावित क्षेत्र सीमित हैं, लेकिन यदि यही गति जारी रही तो भूजल से रीते ब्लॉक की संख्या हर 12.5 वर्षों में दुगुनी होती जाएगी। यानी वर्ष 2017-18 तक सूचीबद्ध राज्यों के 4248 ब्लॉकों में से 1532 ब्लॉक (अर्थात 36 प्रतिशत) संकट के दौर से गुज़र रहे होंगे।

अतिदोहन तो भूजल प्रबंधन की चुनौती का एक छोटा-सा हिस्सा है। इससे भी बदतर बात तो यह है कि कई बड़े भाग विशेषकर सतही सिंचाई तंत्र के अन्तर्गत आने वाले भूभाग जल भराव और इससे जुड़ी लवणीयता या खारेपन की समस्या से ग्रस्त हैं। इसके अतिरिक्त जहां जल भराव या अतिदोहन की समस्या नहीं है, वहां भी पर्यावरण व भूजल के गैर कृषक उपयोगकर्ताओं पर भूजल के विकास के गंभीर प्रभाव पड़ सकते हैं। जल स्तर में होने वाला मौसमी उतार चढ़ाव उथले कुओं, सतही जल धाराओं और प्रदूषण स्तर को प्रभावित कर सकता है। पेयजल की उपलब्धता, गरीबों एवं पर्यावरण पर इसके गंभीर दुष्प्रभाव हो सकते हैं।

इस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है कि *भूजल संसाधनों के भौतिक रूप से खत्म होने के संकट के बहुत पहले ही अतिदोहन और जल स्तर में आती जा रही गिरावट जैसी समस्याएं, भूजल पर निर्भर उपयोगों के बने रहने को प्रभावित करने लगती हैं।* भूजल के कई उपयोग व पर्यावरणीय उपयोगिताएं *जल की गहराई पर निर्भर करती है,* जल की मात्रा पर नहीं। उदाहरण की लिए गंगा घाटी में जल स्तर की गिरावट जल भंडारों के खत्म होने के संकट से बहुत पहले ही (कुओं की गहराई बढ़ाने में लगने वाली लागत के कारण) गरीबों को भूजल से वंचित कर देगी एवं जलधाराओं के आधार प्रवाह को कम कर देगी। गांगेय घाटी के कुछ स्थानों पर 20 हज़ार फीट से भी ज़्यादा गाढ़ी तलछट अवसाद (saturated sediment) मौजूद है। और अगर ऊपरी दसेक फीट से ही पानी निकाला जाए तो भी इसके व्यापक आर्थिक एवं पर्यावरणीय दुष्प्रभाव होंगे।

प्रदूषण

अतिदोहन और जल स्तर में गिरावट की समस्या के इतर भी एक समस्या है जल की गुणवत्ता व प्रदूषण की। प्रदूषण या गुणवत्ता में गिरावट के कारण पानी की उपलब्धता में कमी हो सकती है। अतिदोहन के कारण होने वाली कमी की तुलना में इस कमी की भरपाई होना कहीं ज़्यादा मुश्किल है। कृषि व अन्य क्षेत्रों के अकेन्द्रित प्रदूषण स्रोत एवं केन्द्रित प्रदूषण स्रोत मिलकर एक प्रमुख

जल प्रबंधन चुनौती प्रस्तुत करते हैं। हालांकि गुणवत्ता की सभी समस्याएं मानव जन्य नहीं हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण बांग्लादेश एवं पश्चिम बंगाल में भूजल से पैदा होने वाली व्यापक आर्सेनिक विषाक्तता है। गंगा-मेघना-ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र के जलोढ़ डेल्टाई अवसाद से प्राप्त भूजल में आर्सेनिक प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। इस क्षेत्र का तकरीबन 75000 वर्ग कि.मी. भूभाग उच्च आर्सेनिक सान्द्रता वाले भूजल से प्रभावित माना जाता है।

भूजल से संबद्ध उभरती व्यापक समस्याओं के बावजूद यह अभी भी निश्चित नहीं है कि भूजल उत्खनन और प्रदूषण की समस्या कितनी विस्तृत है। ऐसे ब्लॉकों की संख्या से सम्बंधित सरकारी आंकड़े गुमराह करने वाले हो सकते हैं जहां पानी का दोहन उसके पुनर्भरण के बराबर है या उससे भी ज़्यादा हो रहा है। ऐसा इसलिए कि सरकार द्वारा प्रकाशित दोहन और पुनर्भरण के आकलनों की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में है। इसके अलावा कुछ मामलों में जल स्तर की वे गणनाएं संदेहास्पद हैं जिन पर ये आकलन आधारित हैं।

प्रदूषण की व्यापकता के सम्बंध में भी अनिश्चय की स्थिति बनी हुई है। ये तो स्पष्ट है कि कृषि रसायनों के बढ़ते उपयोग, औद्योगिक कचरे एवं शहरी अवशिष्ट के कारण पिछले दशकों में प्रदूषण अत्यधिक मात्रा में बढ़ा है। परन्तु फिर भी विभिन्न प्रदूषकों की व्यापकता एवं वितरण की जानकारी के लिए पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। प्रायः भूजल की गुणवत्ता सम्बंधी समस्याओं की पहचान कोई दुर्घटना होने या इससे सम्बंधित तथ्यों के मिलने के बाद ही हो पाती है। आर्सेनिक विषाक्तता का प्रकरण इसका उदाहरण है। जब इस विषाक्तता के प्रकरण व्यापक स्तर पर सामने आने लगे तभी इसे एक बड़ी समस्या के रूप में स्वीकार किया गया।

गुणवत्ता और परिमाण सम्बंधी समस्याओं की व्याख्या करने में एक प्रमुख चुनौती संसाधन आधार एवं गतिशीलता को समझने की है। भूजल विशेषज्ञों सहित बहुत सारे लोगों की यह धारणा है कि बारिश के ज़रिए भूजल की तीव्रता से भरपाई हो जाती है और वह पृथ्वी के अन्दर सरलता से बहता रहता है। साथ ही इसकी गुणवत्ता भी एक समान बनी रहती है। परन्तु वास्तव में चट्टान निर्माण की जटिल प्रक्रिया और पुनर्भरण की भिन्न-भिन्न दरों के चलते भूजल की गतिशीलता कहीं ज़्यादा पेचीदा होती है। प्रकारांतर में यह पेचीदगी संसाधनों की स्थिति की समझ को और ज़्यादा जटिल बना देती है।

इसको दो उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। राजस्थान में स्थानीय लोग बताते हैं कि वर्षा के सामान्य से अधिक होने से अतिदोहन कम हो जाता है। हालांकि कई जगहों पर तो लोग जो पानी ज़मीन से निकालते हैं वह सैकड़ों वर्षों और कई जगह तो लगभग 20,000 वर्षों से भूमिगत है। भूजल के पुनर्भरण की गतिशीलता, मिट्टी की पारगम्यता पर निर्भर होती है और भूजल प्रवाह का स्वरूप प्रायः वर्षा के अल्पकालिक उतार-चढ़ाव से कम ही प्रभावित होता है।

इसी प्रकार गुणवत्ता की प्रमुख समस्याएं खास उसी जगह की परिस्थितियों पर बहुत ज़्यादा निर्भर हो सकती हैं। उदाहरण के लिए आर्सेनिक को लिया जा सकता है। किसी कुएं के पानी में आर्सेनिक की मात्रा कुएं के आसपास की ज़मीन में मौजूद जैविक पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करेगी। ज़मीन में गहरे दबे किसी पेड़ के तने के पास से गुज़रने वाले कुएं के पानी में आर्सेनिक की मात्रा उस कुएं से ज़्यादा होगी जोकि इस दबे हुए तने से थोड़ी दूर स्थित है।

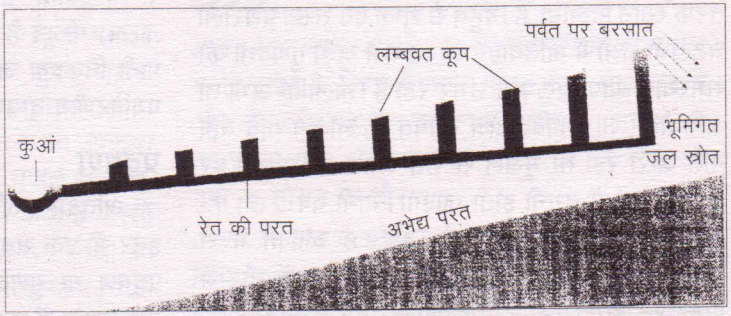

ढलवां कुएं : गुरुत्वाकर्षण का लाभ - ढलवां पहाड़ी या ज़मीन पर गिरने वाले पानी को दूर स्थित कुओं तक लाकर उनका संग्रह और उपयोग करना प्राचीन काल में जल तकनीक सम्बंधी सबसे महत्वपूर्ण खोजों में से एक थी। इसकी शुरुआत ई.पू. 1000 के करीब आर्मेनिया में हुई, पर ई.पू. 300 तक यह विधि भारत में भी प्रयुक्त होने लगी थी।

प्रबंधन की आवश्यकता पर होने वाली बहसें प्राय: उभरती समस्याओं की व्यापकता एवं प्रकृति के बारे में छाई अनिश्चितता से घिर जाती हैं। जबकि प्रबंधन गतिविधियों को शुरू करने में हो रही देर के न पलटे जा सकने वाले परिणाम हो सकते हैं। क्योंकि एक बार प्रदूषित होने के बाद भूजल भण्डारों का फिर से बेहतर स्थिति में लौटना प्राय: असम्भव होता है। प्रदूषक जल भण्डारों के आधार (रेत, मिट्टी एवं पत्थरों) से चिपककर प्रदूषण के स्थाई स्रोत बन सकते हैं। अतिदोहन के कारण भूजल भण्डारों के छिद्र बन्द हो सकते हैं जिसके चलते पुनर्भरण असम्भव हो जाएगा। यदि पुनर्भरण तकनीकी दृष्टि से सम्भव भी हो और जल भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो तब भी प्रवाह की धीमी दर (जो कि कई बारीक कणों वाले जल भण्डारों का लक्षण होती है) के कारण पुनर्भरण की प्रक्रिया इतनी धीमी हो जाती है कि मानवीय समय मापों की सीमा में कुछ भी सम्भव नहीं होता।

इसके परिणामस्वरूप भूजल का अतिदोहन खनिज तेल जैसे संसाधनों के निष्कर्षण ज़ैसा हो जाता है जिनकी भरपाई नहीं हो सकती। तथ्यों के मिलने तक विशेषज्ञों को भी अपलटनीय समस्याओं की उत्पत्ति का पता लगाने में प्राय: कठिनाई होती है। इस प्रकार अनिश्चितताओं से निपटना भूजल प्रबंधन का एक मुख्य अंग है।

भूजल एक छुपा हुआ संसाधन है जिसके बारे में लोगों की समझ काफी कम है। लेकिन विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय सेवाओं के लिए यह बहुत ज़रूरी है। प्रदूषण एवं जलस्तर में गिरावट भूजल पर निर्भर पर्यावरणीय, घरेलू, कृषकीय एवं औद्योगिक उपयोगों के लिए अस्तित्व का संकट बन सकती है। जैसे-जैसे भूजल की मांग बढ़ेगी और इसके दीर्घकालिक दोहन की सीमाएं स्पष्ट होने लगेंगी, भूजल के लिए कृषकों व दूसरे उपयोगकर्ताओं के बीच प्रतिस्पर्धा तेज़ी से बढ़ती जाएगी। इससे लोगों में प्रतिस्पर्धात्मक दोहन की शुरुआत हो सकती है। हरेक व्यक्ति भूजल संसाधनों के खत्म होने से पहले उससे लाभ प्राप्त करने के लिए जितना सम्भव होगा उतना भूजल निकालने लगेगा। इसके परिणाम भूजल की बढ़ती मांग और घटती उपलब्धता के अन्तहीन चक्र के रूप में सामने आ सकते हैं। अत: भूजल के दीर्घजीवी प्रबंधन के लिए प्रतिस्पर्धा के महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दे का समाधान करना ज़रूरी है।

सवाल पुनर्भरण का

भूजल के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा के समाधान के लिए तकनीकी विकल्प सीमित हैं। अधिकतर प्रकरणों में अतिदोहन से प्रभावित समूह तथा समुदाय भूजल भण्डारों के पुनर्भरण की वकालत करते हैं। परन्तु सम्पूर्ण भारत में इस विकल्प की व्यावहारिकता सीमित ही दिखती है। उदाहरण के लिए गुजरात के अधिकांश क्षेत्रों से सम्बंधित आकलन बताते हैं कि पुनर्भरण में वृद्धि अतिदोहन को मात्र 10 प्रतिशत तक कम कर पाती है, जबकि बहुत से अन्य क्षेत्रों में अप्रयुक्त सतही जल बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है जिसका इस्तेमाल पुनर्भरण के लिए किया जा सकता है। और जहां जल उपलब्ध भी है वहां वर्षा का समय और वितरण जलभण्डारों की पुनर्भरण क्षमता को सीमित कर देते हैं। पुनर्भरण एक धीमी प्रक्रिया है। इसकी गति का निर्धारण मिट्टी व उसके नीचे की संरचनाओं की जल अवशोषण की दर द्वारा तय होता है। इसके विपरीत वर्षा का स्वरूप प्राय: मौसमी होता है और यह थोड़े समय के लिए तेज़ी से होती है। इसलिए इसके बहुत कम भाग का भण्डारण पुनर्भरण के लिए किया जा सकता है।

जल भण्डारों के पुनर्भरण की तकनीकी सीमाओं के इतर भूजल संसाधनों के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा के निराकरण में निहित सामाजिक चुनौतियों को समझने के लिए तीन धारणाओं को समझना ज़रूरी है। ये हैं :

अधिकतर प्रकरणों में अतिदोहन से प्रभावित समूह तथा समुदाय भूजल भण्डारों के पुनर्भरण की वकालत करते हैं। परन्तु सम्पूर्ण भारत में इस विकल्प की व्यावहारिकता सीमित ही दिखती है। उदाहरण के लिए गुजरात के अधिकांश क्षेत्रों से सम्बंधित आकलन बताते हैं कि पुनर्भरण में वृद्धि अतिदोहन को मात्र 10 प्रतिशत तक कम कर पाती है, जबकि बहुत से अन्य क्षेत्रों में अप्रयुक्त सतही जल बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है जिसका इस्तेमाल पुनर्भरण के लिए किया जा सकता है।

✔*परस्पर निर्भरता* : भूजल एक ऐसी कड़ी है जो कृषि, पर्यावरणीय व आर्थिक तंत्रों को जोड़ती है और इनको कुछ जगहों पर परस्पर निर्भर बनाती है। उदाहरण के लिए पर्यावरणीय उपयोगिताएं, गरीबों के लिए पानी की उपलब्धता, सूखे के समय खाद्य सुरक्षा की स्थिति एवं विभिन्न फसलों की आर्थिक व्यावहारिकता - ये तमाम चीज़ें एक विशेष जलस्तर तथा भूजल गुणवत्ता पर निर्भर हो सकती हैं। और ये स्थितियां प्राय: जल के इस्तेमाल के तरीकों पर निर्भर करती हैं। जैसे कि अदक्ष सतही सिंचाई तंत्र के रिसाव के कारण होने वाला पुनर्भरण प्राय: उच्च भूजल स्तर को बनाए रखने में मददगार साबित होता है। और यह उच्च भूजल स्तर नदियों के आधार प्रवाह का निर्माण तथा गरीब समुदाय के लिए भूजल की उपलब्धता सुनिश्चित करता है।

बारिश से भरने वाले तालाबों में भारी वर्षा के समय ही ढलान वाला पानी बहकर आता है। इन तालाबों में गाद तेज़ी से भरती है और गहराई कम होने के चलते पानी ज़्यादा छितराया हुआ भी रहता है।

✔*कई भूजल सेवाओं का सार्वजनिक सम्पत्ति प्रकृति का होना* : व्यक्तिगत स्तर पर उपभोक्ता भूजल की सिर्फ दोहन आधारित उपयोगिता को ही प्राप्त कर सकते हैं। जैसे ज़मीन से पानी निकालना एवं किसी विशेष उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करना। परन्तु जब भूजल को जलभण्डारों में ही रहने दिया जाता है तब दोहन आधारित उपयोगिताएं भूजल द्वारा प्रदत्त पर्यावरणीय सेवाओं, सूखे के लिए संरक्षित भंडार एवं अन्य सेवाओं को प्रदर्शित नहीं करती हैं। ये सभी सेवाएं *सार्वजनिक सम्पत्ति* होती हैं। उपभोक्ता व्यक्तिगत स्तर पर इनसे लाभ उठा सकते हैं, लेकिन उसकी स्थिति सभी उपभोक्ताओं की संयुक्त कार्यवाही पर निर्भर करती है। जल भण्डारों के अतिदोहन या उसके प्रदूषण में अपनी भूमिका को नज़रअंदाज़ कर लोग बहुत आर्थिक लाभ उठाते हैं। लेकिन नुकसान यह होता है कि जब भूजल को जल बाज़ार में बेचा जाता है या मानक आर्थिक तकनीकों के द्वारा इसका मूल्यांकन किया जाता है तो इसको बहुत कम आंका जाता है।

✔*स्तर* : अधिकतर प्रकरणों में भूजल का प्रबंधन स्थानीय स्तर पर नहीं किया जा सकता है। भूजल भण्डारों का विस्तार क्षेत्र दस से लेकर हज़ारों गांवों तक हो सकता है। नतीजतन जल भण्डारों की गतिशीलता व्यक्तिगत या ग्राम स्तर पर होने वाली कार्यवाहियों के भूजल पर पड़ने वाले प्रभावों को सीमित कर देती है। जबकि दूसरी तरफ शासकीय एजेन्सियों द्वारा लागू की जाने वाली प्रबंधकीय रणनीति को इस तरह ढालना कठिन होता है ताकि भूजल की परिस्थितियों व उपयोगों में स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले बदलावों को जाना जा सके।

विश्व के कुछ भागों विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका में भूजल प्रबंधन की रणनीति, निजी अधिकारों व नियमन व्यवस्था की मिलीजुली प्रणाली पर आधारित रहती है। इस प्रकार की रणनीति एक ओर तो व्यक्तिगत उपयोग के अधिकारों के ज़रिए सभी उपभोक्ताओं को शामिल करके प्रतिस्पर्धा को खत्म करने की कोशिश करती है। वहीं दूसरी ओर यह नियमन व्यवस्था का उपयोग करके भूजल के सार्वजनिक हित वाले पक्ष का ध्यान भी रखती है। कुछ प्रकरणों में ऐसे भूजल अधिकारों को लागू किया गया है जो निर्देशित करते हैं कि एक व्यक्ति भूमि से कितना जल निकाल सकता है? भूजल के किस प्रकार के उपयोगों को अनुमति दी जा सकती है? जल को दूसरे उपयोगकर्ताओं को बेचा जा सकता है या नहीं? आदि। जहां भी हस्तांतरणीय जल अधिकार प्रदान किए जाते हैं वहां जल बाज़ारों का समर्थन एक ऐसी व्यवस्था के रूप

में किया जाता है जिसका उद्देश्य उच्चतम महत्व के उपयोगों के लिए जल का आवंटन सुनिश्चित करना है।

व्यक्तिगत जल अधिकारों के नियमन व उन्हें लागू करने पर आधारित रणनीतियों और जल बाज़ार को भारत में भारी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। व्यावहारिक स्तर पर देखें तो भारत के ग्रामीण क्षेत्र में लाखों कुओं और उनकी विविधतापूर्ण परिस्थितियों के मद्देनज़र यह स्पष्ट नहीं होता कि जल अधिकारों की स्थापना, निगरानी एवं क्रियान्वयन किस प्रकार से सम्भव हो पाएगा। इसके अतिरिक्त व्यवहार में ऐसे कानून असमानतापूर्ण एवं कठिन भी होंगे। भूजल नियमन के लिए 1970 के दशक की शुरुआत में केन्द्रीय भूजल बोर्ड ने एक नमूना विधेयक प्रस्तुत किया था। इस विधेयक में शासकीय एजेन्सियों के अन्तर्गत एक अतिकेन्द्रीकृत नियमन तंत्र का प्रस्ताव रखा गया था। भारत के कुछ भागों में इस विधेयक के संशोधित रूप को अपना लिया गया है, लेकिन इसका क्रियान्वयन बहुत कम हो पाया है।

व्यक्तिगत अधिकारों एवं शासकीय नियमन पर आधारित प्रबंधन रणनीतियों की व्यावहारिक कमियों के अलावा अधिकारों, नियमन एवं जल बाज़ार पर आधारित रणनीतियों की अंतर्निहित अपूर्ण प्रकृति पर गौर करना ज़रूरी है। जल अधिकारों में भूजल सेवाओं की परस्पर निर्भरता व सार्वजनिकता की प्रकृति को समाहित करते हुए परिभाषित करना कठिन है। क्योंकि जब जल अधिकार बाज़ार व्यवस्था के माध्यम से हस्तांतरणीय होते हैं तब भी बाज़ार में प्रदर्शित होने वाली इनकी उपयोगिता सार्वजनिक उपयोगिता की बजाय प्रत्यक्ष उपयोगिता ही होती है। जब भूजल के उपयोग एवं हस्तांतरण को सार्वजनिक हितों की रक्षा की दृष्टि से नियमित करने के प्रयास किए जाते हैं तो भूजल प्रबंधन रणनीतियां जटिल एवं अपरिवर्तनीय हो जाती हैं। परिणामस्वरूप ये स्थानीय स्तर पर सामने आने वाली विभिन्न परिस्थितियों या परिस्थितियों की परिवर्तनीय प्रकृति के अनुसार प्रतिक्रिया करने में अक्षम हो जाते हैं।

उपरोक्त खामियों के कारण भूजल प्रबंधन की रणनीतियों को प्रभावी बनाने के हिसाब से इनमें निर्णय प्रक्रिया की राजनैतिक प्रकृति का प्रतिबिंबित होना ज़रूरी है। भूजल सेवाओं की सार्वजनिक प्रकृति एवं भूजल पर आधारित तंत्रों का परस्पर सम्बंधित स्वरूप, प्रबंधन की रणनीतियों एवं उद्देश्यों पर अत्यधिक बहस का कारण बनते हैं। भूजल के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा का समाधान सामान्यतः दो बातों पर निर्भर करता है। पहली तो विभिन्न समूहों की उभरती समस्याओं की प्रकृति तथा प्रबंधन के विकल्पों को समझने की क्षमता और दूसरी प्रबंधन गतिविधियों को निर्धारित करने वाली निर्णय प्रक्रिया में इन समूहों के विचारों को शामिल करना।

जानकारी की उपलब्धता आर्थिक शक्ति व संगठित होने की योग्यता जैसे कारक, इस प्रकार के वार्तालापों में प्रभावी ढंग से सहभाग करने की विभिन्न समूहों की क्षमता को बहुत ज़्यादा प्रभावित करते हैं। वर्तमान परिस्थितियों में भूजल प्रबंधन के निर्णय मुख्यतः आर्थिक शक्ति (अपने कुओं को गहरा करवाने की लागत को वहन करने की लोगों की योग्यता) पर निर्भर होती है। इसके निराकरण के लिए शक्ति संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित रणनीतियों और प्रबंधन ज़रूरतों के राजनैतिक स्वरूप को स्पष्ट मान्यता देने की ज़रूरत है।

प्रभावी भूजल प्रबंध तंत्र के विकास को प्रोत्साहित करने में निम्न कारक सक्षम हो सकते हैं - (1) जानकारियों की उपलब्धता में सुधार (2) सार्वजनिक उपयोगिताओं के संरक्षण के लिए दबाव बनाने हेतु लोगों को कानूनी आधार प्रदान करना (3) ऐसे प्रबंध संगठनों का निर्माण जो कि माध्यमिक स्तर (ग्रामीण एवं राजकीय स्तर के बीच) पर कार्य करने में सक्षम हों।

(स्रोत फीचर्स)

मारकस मोएंक का लेख इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली पत्रिका से लिया गया है। अनुवाद : अरविन्द सोलंकी